भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण

डा0 वीरेन्द सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

वस्तुतः मनुष्य की प्रगति का इतिहास प्राकृतिक परिवेश से उसके सामंजस्यपूर्ण व्यवहार की कहानी है। पर्यावरण ने अपने असंख्य–संगठित–समुदायों के साथ मनुष्य जीवन को खुशहाल एवं सुखमय बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। इसके मूल में मनुष्य का प्रकृति के प्रति सद्भाव एवं सम्मानपूर्ण रवैया प्रमुख कारण रहा है।

पर्यावरण संरक्षण को भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व दिया गया है। यहाँ मानव जीवन को सदैव मूर्त या अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु–पक्षी आदि के साहचर्य में देखा गया है। मनुष्य एवं प्रकृति के आन्योन्याश्रित संबंध को भारतीय ऋषियों–मुनियों ने बड़ी गहराई से समझा था। यही कारण है कि भारतीय चिंतन में पर्यावरण –संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना कि यहां मानव का अस्तित्व रहा है हाँलांकि उसका स्वरूप वर्तमान समय से नितांत भिन्न रहा है। उस काल में पर्यावरण पर काम करने के लिए कोई सामाजिक संस्थायें या कोई राष्ट्रीय नीति नहीं थी। इसकी शायद आवश्यकता भी नहीं थी। ऋषि–मुनियों के द्वारा यह लोगों को घुट्टी में पिलाया जाता था जिसके कारण पर्यावरण संरक्षण का भाव मानव जीवन का अभिन्न अंग था तथा मनुष्य पर्यावरणीय नियमित क्रिया कलापों से जुड़ा हुआ था।

भारतीय ऋषियों–मुनियों ने जनता को पहला पाठ यही सिखाया कि''इस सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक जड़–चेतन वस्तु में आत्मिक साहचर्य है। अतः यहां कभी प्रकृति के उपादानों को मनुष्य से भिन्न नहीं देखा गया। यहां तक कि प्रकृति के अंगों में देवत्व दर्शन की यहां सनातन परंपरा रही है, जिसका अपना ठोस दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार रहा है। ईश्वरीय सत्ता को सर्वव्यापी मानना और प्रत्येक जड़–चेतन में उसकी सत्ता को अनुभव करना, यही भारतीय आध्यात्म का सार है। इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में प्रकृति के प्रति आस्था के प्रसून खिलते रहे हैं और उनमें देवत्व की झलक–झांकी मिलती रही है।''

आस्था शब्द व्यक्ति के आंतरिक भावों को प्रदर्शित करता है। धार्मिक आस्था हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है क्योंकि इस आस्था को बनाये रखने में ऋषि–मुनियों ने अनेक विधान रचे। भारतीय ऋषि–मनीषियों को प्रकृति का पारदर्शी ज्ञान था। प्राकृतिक अनुराग एवं प्रकृति संरक्षण की चिंतनधारा भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता के महनीय पद से अलंकृत किया गया है और इसके घटक पंचतत्वों तथा वृक्ष–वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर अभ्यर्थना की जाती है क्योंकि प्रत्येक पेड़–पौधे, वनस्पति तथा वृक्ष में प्रकृति की अनुपम शक्ति और एक विशिष्ट रहस्य छुपा हुआ है, जिसको समझने व जानने के लिये हमारे ऋषियों ने जहाँ बड़े–बड़े ग्रन्थ लिखे, वहाँ इन वृक्षों के शुभ–अशुभ परिणामों को लेकर अनेक शोधपूर्ण अध्ययन भी किये। कौन से वृक्ष हमारे लिये उपयोगी हैं ? कौन से वृक्ष केवल सौन्दर्य की दृष्टि से उपयोगी हैं ? कौन से वृक्ष हवन की

दृष्टि से पवित्र हैं। इन सभी तथ्यों की जानकारी हमारे वैदिक ग्रन्थों में विस्तृत रूप से देखने को मिलती है। वेदों में प्रकृति और पर्यावरण की इन्हीं सब विशेषताओं के कारण ही यहाँ पर पर्यावरण–संरक्षण और इसके विकास के प्रति सतत जागरूकता बनी रही है परन्तु वर्तमान में पर्यावरण के प्रति इस भावधारा के तिरोहित होते ही प्रकृति के शोषण और शोषक रूपी आत्मघाती मनोवृत्ति पनपी, जिसके अभिशप्त परिणाम से वर्तमान में विश्व त्रस्त हो रहा है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में पर्यावरण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसके संरक्षण एवं विकास पर हमारी संस्कृति पूर्णतः जागरूक रही है। यहाँ मानव जीवन को सदैव एवं अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु–पक्षी आदि के साहचर्य में ही देखा गया है। पर्यावरण के ये तत्व हमारे जीवन के आधार हैं, अतः इनको संरक्षण प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। हमारा जीवन पर्यावरण से सघनता से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति मानती है कि इस देह की रचना पंचतत्वों (क्षिति, जल, पावक, अग्नि, वायु, आकाश) से ही हुई है। हमारे वैदिक ग्रन्थों में इन्हीं पंचतत्वों को मानव मात्र के लिये शुभ–अशुभ, अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सूचक भी माना जाता है, क्योंकि इन्हीं पंचतत्वों के सूक्ष्मभांश से मानव शरीर निर्मित हुआ है। इन पंचतत्वों में भी शुद्ध वायु और जल मानव जीवन के लिये अति आवश्यक है, क्योंकि हमारे जीवन भूत प्राणों में शक्ति का संचार वायु से ही होता है। इसके साथ ही वायु हमारे जीवन का आधार है, जलीय तत्व, जो रक्त के साथ हमारी धमनियों में भी प्रवाहित होता है और इन्हीं तत्वों के फलस्वरूप हमारी प्राणशक्ति, बल और उर्जा का निर्माण होता है। अतः इन तत्वों की रक्षा करना सही अर्थों में मानव व इस सुन्दर सृष्टि की रक्षा करना ही है, क्योंकि इन्हीं तत्वों से मिलकर हमारे पर्यावरण का निर्माण होता है। चाणक्य ने कहा था साम्राज्य की स्थिरता पर्यावरण की स्वच्छता पर निर्भर करती है।

वैदिक साहित्य में प्रकृति के संरक्षण की भावना विशद रूप से दृष्टिगत होती है। पर्यावरण का तात्पर्य है 'परित आवरणं पर्यावरण अथवा परितः आवृणोति इति पर्यावरणम् अर्थात प्राणि जगत को सभी ओर से आवृत करने वाले तथा प्रभावित करने वाले तत्व यथा पृथ्वी जल, वनस्पति, वायु, आकाश, वायुमण्डल आदि पर्यावरण कहलाते हैं।वेदों में वातावरण शुद्धि हेतु पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, वनस्पति, वायुमण्डल की प्रार्थना इसलिये की गयी है कि पर्यावरण का अस्तित्व ही इनके द्वारा है। वेदों में नदियों का खूब वर्णन है। नदियों और मुनि विश्वामित्र का संवाद 'रमध्वंमेवर्चसे सोम्याय ऋर्तावर्रीरूप मुहुर्तमेवै' वेदों में स्पष्ट रूप से वनों और वन्य जीवों का भी वर्णन है जो पर्यावरणीय विचारधारा को पुष्ट करता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जीवनदायी तत्वों की शुद्धता संरक्षित हो तो जीवन भी शुद्ध और सुरक्षित रहता है। समूची सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात पंचतत्वों से विनिर्मित है। अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश यही किसी न किसी रूप में जीवन की सृष्टि करते हैं। वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रन्थ माना गया है क्योंकि इनमें सृष्टि के जीवनदायी तत्वों की विशेषताओं का काफी सूक्ष्म व विस्तृत विवरण है। ''ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपान्तर और उसके गुणों की व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में वायु के गुणों, कार्य और उसके विभिन्न रूपों का आख्यान मिलता है। अर्थवेद पृथ्वी तत्व का मुख्य वेद है। सामवेद का प्रमुख तत्व जल है। आकाश तत्व का वर्णन सभी वेदों में हुआ है। वैदिक महर्षियों ने इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना, इसलिये उन दिनों जड़–चेतन सभी रूपों की उपासना व अभ्यर्थना की जाती थी और इसलिये निश्चित तौर पर समस्त सृष्टि में सुख–शांति व समृद्धि का वातावरण था।''

भारतीय ऋषि–मुनियों एवं मनीषियों ने प्रकृति को मातृत्व के रूप में सहज ही स्वीकारोक्ति दी है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यः वेदों के इस मंत्र में धरती माता की सजल संवेदना का गहरा रहस्य समाया हुआ है। धरती हमारी माता है। वह माँ के समान अपनी संतानों को पोषण, संरक्षण एवं स्नेह प्रदान करती है। वह संतान के विकास की सभी प्रक्रियाओं को अपार धैर्य, कुशलता एवं तत्परतापूर्वक पूर्ण करती है। इसी भावोद्गार से ही हमें धरती बेजान–बंजर टुकड़ा मात्र नहीं लगती। धरती हमारे लिये जीवंत प्रतिमा है और हम अपने प्राणों से इसका अर्ध्यदान करते हैं। धार्मिक कृत्यों में धरती का पूजन किया जाता है। धरती माता के प्रति अगाध श्रद्धा अभिव्यक्त कर कहा जाता है –

पृथ्वी ! त्वया धृता लोका, देवि ! त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय माँ देवी। पवित्रं कुरु चासनम।।

भारतीय ऋषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को ही देवता स्वरूप माना है साथ ही इनकी दिव्यता के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं। ऋग्वेद के धावा–पृथिवी सूक्त में आकाश को पिता और धरती को माता मानकर उससे अन्न और यश देने की कामना की गई है – ते नो गुणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रः द्यावा पृथिवी धासथो वृहत। येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समन्वितम्। (ऋग्वेद–1/160/5)। ऐतरेय ब्राह्मण (8/5) में पृथ्वी को ऐश्वर्य और सौभाग्यदात्री कहा गया है। धरती की संवेदना सघन एवं सजल है। इसका धैर्य अपार एवं असीम है। माता की सघन संवेदना एवं पुत्र की गहरी कृतज्ञता के मधुर सम्बन्ध ही अब तक प्रकृति एवं पर्यावरण के गति चक्र को अनुकूल बनाये रख सके हैं।

वेदों में मुख्य रूप से पृथ्वी लोक, अंतरिक्ष लोक तथा द्युलोक हैं। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रकृति का अतिक्रमण तो देवों के लिये भी निषिद्ध है – अतिक्रम्य न गच्छन्ति मरुतः। मरुतो नाह रिष्यथ।। इन स्थितियों को देखते हुये मनुष्य को भला कैसे इसको क्षति पहुँचाने का अधिकार मिल सकता है। ऋषि कहता है कि सम्पूर्ण जैव मण्डल (बायो स्फियर) का नियमन एवं सम्मान ही इसकी संरक्षण एवं सुरक्षा है – नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे महे शुष्माय येमिरे। (ऋग्वेद, 8/7/5) वहीं यजुर्वेद कहता है – अंतरिक्ष मा हिंसीः। अथर्ववेद के अनुसार – यस्या ह्रदयं परमे त्योमन्। (12/1/8 यजुर्वेद)। अर्थात् जिस प्रकार ''ह्रदय की धड़कन पर प्राणी का जीवन निर्भर है, उसी प्रकार अंतरिक्ष (परम व्योम) की सुरक्षा में ही पृथ्वी और पर्यावरण की सुरक्षा है। अंतरिक्ष रूपी ह्रदय के नष्ट होते ही समस्त ब्राह्माण्ड का विनाश सुनिश्चित है ..... अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त (12/1) इन तीनों मंडलों का व्यापक विवेचन करता है। अमा च अरण्ये रिषः पाहि और अन्यः आख्यात आभृतः अन्यः कृष्णाः रसेभ्यः। अर्थात् प्रकृति का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसे वेदों में वर्णित न किया गया हो। जहाँ एक ओर वेदों में सूर्य को देवो भव कहा है वहीं 'वायुवै वै प्राणो भूत्वा शरीरमा विशत्। अर्थात् वायु को भी देवतुल्य मानकर यही श्रद्धास्पद भाव अर्पित किया जाता है। औपनिषदिक मान्यता है कि वायु ही प्राण बनकर शरीर में वास करती है। अथर्ववेद के भूमि सूक्त में जल से प्रार्थना की गई है कि यह हमारे शरीर को सदा पवित्र बनाये रखे – शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु। वर्षा जल के मेघों को वेदों में पूरी सृष्टि का पिता बताया गया है – अर्वाग्नेतेनस्तनभित्नुने ह्यायोर्निषिन्चन्न सुरः पितानः''। पर्यावरण का जल एक महत्वपूर्ण घटक है जिसका वर्णन वेदों में खूब किया गया है। जल के एक सौ एक प्रकार वेदों में बताये गये हैं। पर्यावरण के घटकों में वैदिक साहित्य में अग्नि को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। यह परमात्मा की वास्तविक शक्ति है जो सर्वत्र, प्रत्येक समय उपस्थित है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता वनों से ही आरम्भ हुई। हमारे पूर्वज अध्यात्म के गुरू रहे हैं। महान ऋषि–मुनियों, दार्शनिकों, संतों तथा मनस्वियों ने लोकमंगल के लिये चिंतन मनन किया। वनों में ही हमारे विपुल वाङ्मय, वेद–वेदांगों, उपनिषदों आदि की रचना हुई। अरण्य में लिखे जाने के कारण ग्रन्थ विशेष आरण्यक कहलाये। प्रकृति के विविध स्वरूप को समझते हुये 'वृक्षायुर्वेद' की रचना की गई, जिसका मूल सिद्धान्त था, आधिदैविक जीवन के महत्व को समझते हुये आधिभौतिक जीवन यापन हेतु प्रकृति का शास्त्रीय विधि से उपभोग करना। हमारे पुरखे कोई भी कार्य करने से पूर्व प्रकृति को पूजते थे –

अश्वत्थो वट वृक्ष चन्दन तरुर्मन्दार कल्पौद्रुमौ।

जम्बू–निम्ब–कदम्ब आम्र सरला वृक्षाश्च से क्षीरिणः।।

सर्वे ते फल संयुतः प्रतिदिन विभ्रा जनं राजते।

रम्यं चैत्ररधं च नन्दनवनं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।

वृक्ष पर्यावरण के प्रमुख अंग हैं – यह हमारा अज्ञान ही है कि हम समुचित ढंग से उनके बारे में नहीं जानते हैं। वनस्पतियों का यही गुण धर्म एवं उनकी सदुपयोगिता उन्हें देवत्व का स्थान प्रदान करती है। जैसे–जैसे मनुष्य अपनी वैज्ञानिक शक्तियों का विकास करता जा रहा है प्रदूषण की समस्या भी बढ़ती जा रही है। विकसित देशों में वातावरण का प्रदूषण सबसे अधिक बढ़ रहा है। यह एक ऐसी समस्या है जिसे किसी विशिष्ट क्षेत्र या राष्ट्र की सीमाओं में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। यह विश्वव्यापी समस्या है इसलिये सभी राष्ट्रों का संयुक्त प्रयास ही इस समस्या से मुक्ति पाने में सहायक हो सकता है।'' पिछले दिनों किये गये वैज्ञानिक विश्लेषण से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि इन दिनों पृथ्वी के वायुमण्डल में प्राण वायु तेजी से कम होती जा रही है तथा दूसरे तत्व यथा कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि बढ़ रहे हैं। इस स्थिति के लिये बढ़ती हुई यांत्रिक सभ्यता को ही उत्तरदायी ठहराया गया है। इसलिये इस गम्भीर समस्या से निजात पाने के लिये वृक्ष लगाने और वनस्पतियों का संबर्द्धन करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है।यह कैसी विडम्बना है ? कि हम चाँद पर पहुँच चुके हैं और मंगल ग्रह पर पहुँचने के प्रयास में हैं परन्तु वर्तमान में ''मानव ने विकास के नाम पर पर्यावरण का जितना शोषण एवं विनाश किया, उतना सम्भव है मानव की विकास यात्रा में पहली बार हुआ है। कभी पर्यावरण हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग हुआ करता था। कभी वातावरण की सुरम्यता हमारे एवं जीवों तथा वृक्ष वनस्पतियों के बीच संवेदना के गहरे रिश्तों से जुड़ती थी। प्रकृति माता के आंगन में हम प्यार एवं प्राण दोनों पाते थे। मेघ अपने मर्यादित क्रम में बरसते थे। नदी की धारा में, हवाओं की सरसराहट में पक्षियों के कलरव में हम नैसर्गिक आनंद का अनुभव करते थे। वर्तमान में हमारी भोगवादी संकीर्ण मानसिकता ने मानव एवं प्रकृति के बीच सभी सूत्रों को विच्छिन्न कर दिया है। अतः जिससे अमृत बरसता था। वहीं उसके द्वारा आग बरस रही है; जो विकास का माध्यम था, आज विनाश का मंजर (दृश्य) खड़ा कर रहा है। प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा हुआ कैसे और क्यों ? और कौन इसके लिये जिम्मेदार है ? प्रकृति तो जीवन के विकास का कार्य कर रही थी, परन्तु उसे मानव ने विनाश के पथ पर बढ़ने को विवश किया है। प्रकृति कल्याणकारी शिव के साथ–साथ मिलकर मानव के उज्जवल भविष्य की संरचना में जुटी थी। इसमें कोई दो राय नहीं कि मानव ने ही उसे प्रलयंकारी रौद्ररूप का त्रिशूल थमाया है। इसके लिये जिम्मेदार कौन–मानव या प्रकृति ? इसका एक ही जबाव है

कि मानव और उसकी स्वार्थपरक प्रवृत्तियाँ। वर्तमान की स्थितियों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि मानव को अपनी प्रवृत्तियों को बदलना होगा। प्रकृति के सभी घटकों के साथ पूर्ववत् स्नेह, सौहार्द्र, सहयोग एवं साहचर्य सम्बन्धों को एक बार पुनः स्थापित करना होगा। तभी प्रकृति माता रूद्र के रौद्ररूप को छोड़कर मंगलकारी शिव के साथ होगी और विनाश के स्थान पर विकास का चक्र चलायेगी।

आज समाज एवं विश्व के विकास को लेकर जो विचारधारा प्रवाहमान है, वह ऋषियों द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त धारा की धुर विरोधी है। इसे आसुरी संस्कृति की उपज कहें तो शायद गलत न होगा। इनका आदर्श है– प्रकृति का भोग, इसके संसाधनों का अधिकाधिक शोषण। इनके लिए प्रकृति मात्र भोग का संसाधन है। प्रकृति के प्रति श्रद्धा सम्मान की बात तो दूर रही, इसको सहज अपनी सहयोगिनी एवं पूरक सत्ता के रूप मे भी देखने – समझने की समाज एवं विश्व के पास दृष्टि नहीं है। स्वामी विवेकानंद जब जापान गए थे, तो वहाँ एक जापानी ने उनसे प्रश्न किया–''आप कहते हैं कि भारत के पास वेद,पुराण, उपनिषद जैसे श्रेष्ठतम ग्रंथ हैं, फिर भी भारत एक पिछड़ा हुआ देश क्यों है?''विवेकानंद ने उत्तर दिया बंधु, जब किसी व्यक्ति के हाथ में बढ़िया बंदूक हो,परन्तु वह उसे चलाना ही न जानता हो, तो उसमें बंदूक का क्या दोष है। इसी प्रकार यदि भारतीय अपने श्रेष्ठ ग्रन्थों को न पढ़ें, उनसे सबक न लें तो उसमें ग्रन्थों का क्या दोष है?'' वह जापानी उनके इस उत्तर से इतना प्रभावित हुआ कि वह उनका शिष्य बन गया। ऋषि–मुनि अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर यह भली–भाँति समझ चुके थे कि समाज में सभी वैज्ञानिक नहीं बन सकते। इसलिए समाज कल्याण के प्रति समर्पित इन मनीषियों ने अपने उत्कृष्ट ज्ञान को व्यवहारिक रूप में जनोपयोगी स्वरूप प्रदान कर, स्थायित्व प्रदान करने के लिए अनेक नियम बना कर उन्हें कर्म का आचरण बनाते हुए शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, धर्म–अधर्म के साथ जोड़ दिया। उददेश्य था कि समाज का प्रत्येक नागरिक इन सरल नियमों का पालन करते हुए पारिस्थितिकी को यथावत् और सुदृढ़ रखकर स्वविकास की ओर कद बढाता रहे। यह थी ऋषि–मुनियों की जन कल्याण से ओत–प्रोत वैज्ञानिक चिंतनधारा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- पर्यावरण वर्तमान और भविष्य–डा0 वीरेन्द्र सिंह यादव ,राधा पब्लिकेशन्स दरिया गंज ,नई दिल्ली।
- पर्यावरण एक परिचय–श्री शशि शुक्ला और एन0के तिवारी
- रामप्रसाद एण्ड सन्स हमीदिया रोड, भोपाल–1
- पर्यावरण शिक्षा– डा0 एम0के0 गोयल विनोद पुस्तक मन्दिर ,आगरा–2
- समाज और पर्यावरण– जगदीश चन्द्र पाण्डेय प्रगति प्रकाशन,जयपुर
- पर्यावरण शिक्षा– श्यामसुन्दर पुरोहित अजन्ता बुक्स,बीकानेर
- पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधान–संजय तिवारी साहित्य पब्लिकेशन्स,आगरा
- सामाजिक पर्यावरण भौतिक एवं जैविक पर्यावरण–प्रो0 एच0एस0 शर्मा राधा प्रकाशन मन्दिर,आगरा

Copyright © 2015, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.